३५

[illegible]

[illegible]

आम्नाय-ग्रन्थालय,
[illegible],
वाराणसी-५

ग्रन्थालय
सी, वाराणसी-५

'पृथु'

पौराणिक कथा

लेखकः—

अभय कुमार अवस्थी

प्रकाशक

साहित्य मन्दिर, उन्नाव.

'वेनु'

सुसज्जित सदन में सभासद यथोचित आसीन थे। नृत्य-भंगिमाएं, संगीत-स्वर, सुरा, सुन्दरी सब साथ ही साथ मादकता को पराकाष्ठा पर पहुँचा रहे थे। सभी झूम रहे थे, सभी मदमत्त थे।

यह महाराज 'वेनु' की राजसभा थी। राजा सभासद और अन्य सहयोगी सभी प्रजा के परिश्रम की कमाई का सद्व्यय कर रहे थे।

"राजा प्रजा का परमेश्वर है। उसकी आज्ञा ईश्वरीय आदेश है। आदेश की अवहेलना अपराध है, अधर्म है।" सामान्य धारणा थी।

अपराध के दण्ड का भय और अधर्म के पाप की कल्पना ने प्रजा को अन्धा कर दिया था।

पूर्ति से आवश्यकताएं बढ़ती ही हैं, घटती

नहीं। राजा की विलासता बढ़ती ही गई; पूर्ति के लिये राज्य-कर बढ़ाये गये। क्योंकि कर-वृद्धि का अधिकार था। साथ ही अधिकारों की रक्षा के लिये पास में प्रबल सैन्य शक्ति भी। राज्य करों ने वामन सा विस्तार किया। प्रजा का सर्वस्व लेकर भी उनकी पूर्ति नहीं हुई।

ईश्वर देर करता है, अन्धेर नहीं। राजा के पापों का फल अकाल बनकर आया। पर पापी उसे कब पहचान पाता है। मदमत्तों का वही क्रम चलता रहा।

गेहूं के साथ घुन भी पिसता है। राजा के साथ प्रजा भी दुर्भिक्ष और करों के बीच पिसती रही।

कर संग्रह की कठोरता के कारण कर्मचारियों की प्रजा पर मनमानी चलती थी। दुर्भिक्ष में पेट की परेशानी ने उनकी मनमानी को और भी

बढ़ा दिया। धन की आवश्यकता के कारण राजा ने भी कर्मचारियों के पक्ष को ही बल दिया। कर्मचारियों के अनाचारों ने और भी प्रगाढ़ता पाई।

प्रजा में राज-सत्ता विरोधी कारणायें बल पाने लगीं। किन्तु राजा के भय से भीतर ही भीतर।

२

राज्य सभा वैसी ही लगी थी। सभासदों का दैनिक कार्य था अपनी अपनी सुन्दरी के साथ आना, संगीत सुनना, सुरा पीना, नृत्य देखना और फिर मस्ती के साथ ··· ··· ।

गायिका गा रही थी, परिचायक आया और नियमानुसार ठहरा रहा। तब तक, जब तक गीत चलता रहा। समाप्ति पर प्रजापतिनिधियों के आने की सूचना दी। राजा ने बुला लाने का आदेश दिया। कुछ लोग आये। और अभिवादन

कर बैठ गये। राजा ने आने का कारण पूछा।

एक ने-दुर्भिक्ष की बात बताई।

दूसरे ने-बढ़े करों का दुखड़ा रोया।

तीसरे ने-राज्य कर्मचारियों के कारनामे कहे।

चौथे, गुरुदेव ने-राज्य धर्म की ओर आगाह किया।

छठें, नवयुवक 'निषाद' ने प्रजा के अधिकारों की मांग की।

राजा की क्रोधाग्नि भड़क उठी। सभी बन्दी बना लिये गये।

३

क्रान्ति दमन से दबती नहीं, वरन् बढ़ती ही है। प्रजाप्रतिनिधियों के बन्दी बनाये जाने के समाचार के साथ ही साथ क्रांति का सन्देश भी घर-घर पहुँचने लगा। जन-जन में दमन की प्रक्रिया और मन-मन में सत्ता विरोधी भावनायें

पनपने लगीं।

प्रजा के अधिकार सामने आये। आँखें स्पष्ट हो गईं।

अपने अधिकारों के लिये लड़ने की तैयारियाँ आमतौर से होने लगीं। भूखों मरने से लड़कर मरना अच्छा है। इस धारणा ने क्रान्ति को और अधिक शक्ति एवं सक्रियता प्रदान की।

विद्रोह और दमन साथ ही साथ जोर पकड़ने लगे। सारे देश से क्रान्ति की आवाज आने लगी।

४

अब भी राज्य सभा वैसी ही थी। कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ था। वही सुरा, स्वर, सुन्दरी और नृत्य। वही मादकता, वही मस्ती, वही सब कुछ। सब मदमत्त थे। क्रमशः निकट आते हुये कोलाहल ने सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट

कर लिया था। दूत ने आकर प्रजा के आवेग की सूचना दी। परिचायक ने प्रजा प्रतिनिधियों के आने की अनुमति मांगी। राजा ने बुला लाने का आदेश दिया।

प्रतिनिधि-गण आये और अभिवादन कर अपनी बात कहने लगे। राजा ने एक न सुनी। अपने ईश्वरीय अधिकारों से अवगत करा, राज्य भक्ति का आदेश दिया। पर वे आये थे, अधिकार मांगने, आदेश सुनने नहीं। अतः उन्होंने अपनी स्पष्ट माँगें रखीं। राजा ने एक भी न मानी। सभी प्रतिनिधि बन्दी बना लिये गये।

सुनते ही सदन सौध पर एकत्रित जन समुदाय उत्तेजित हो उठा। राजा के सशस्त्र सैनिकों ने उसे भगा दिया। इसमें काफी घायल हुये और कुछ मरे भी।

६

राज-द्वार के दमन ने जनक्रांति की जलती ज्वाला को और भी प्रज्वलित कर दिया। सारे देश में आन्दोलन आवेग के साथ चलने लगा। अधिकारों के लिए आत्मोत्सर्ग कर देने वालों की संख्या बढ़ने लगी।

घोर-दमन से राज्य-शक्ति क्षीण होने लगी।

राज्य-कर्मचारियों पर भी क्रांति का प्रभाव पड़ा। उनमें भी विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होने लगी। वे भी क्रांति में पहले गुप्त और फिर प्रकट योग देने लगे।

कर्मचारियों के क्रांति-योग ने राज्य-शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचाया और आन्दोलन को बल दिया।

सैनिकों से स्वदेश-सुरक्षा और विदेश-विजय का कार्य लिया जा सकता है, विद्रोह-दमन का

नहीं। वे भी तो प्रजा ही होते हैं। उन्हें, उनके भाई को भी तो राज्य के अनाचारों का शिकार बनना पड़ता है। तब वे राजा का साथ कैसे दे सकते थे।

सैनिक सामने खड़े निर्दोष शत्रु को मार सकते हैं। पर अपने भाई को नहीं। उसे मारते समय उनका शस्त्र सहानुभूति से अवश्य झुक जायेगा।

अतः सम्पूर्ण राज्य-सेना राजा का साथ छोड़, विद्रोह में सम्मिलित हो गई।

वैभव के पुतले संगीत, सुरा, सुन्दरी और नृत्य के मदिर-आनन्द के साथ जनक्रांति की जलती ज्वाला में जल गये। राजा अपने सभी सभासदों, सहयोगियों एवं सम्बन्धियों के साथ समाप्त कर दिया गया।

प्रजा ने अपनी प्रधानता प्रमाणित कर दी। आज पहली बार राजा के ईश्वरीय अधिकारों

को थोथा सिद्ध कर दिया।

सारे देश में विजयोत्सव मनाये गये। जनता में अपूर्व उल्लास था। सब प्रसन्न थे। क्योंकि सब की विजय थी।

६

जनता प्रसन्न थी, अपनी विजय पर। 'अपने ऊपर अपना राज्य होगा' सोचते ही सब विभोर हो उठते। किन्तु शासन कैसे चले? राजा कौन बने? सभी विजेता हैं। सबके अधिकार हैं। सब राजा बनेंगे। पर हो क्या? शासन कैसे चले?

निश्चित हुआ- जिसे सब लोग चाहें, वह राज्य करे। किन्तु ऐसा कोई नहीं, जिसे सब लोग चाहें। तब क्या हो?

अन्त में निश्चित हुआ-जिसे अधिक लोग चाहें, वह राज्य करे। जब तक अधिक लोग चाहें,

तब तक राज्य करे।

सबके मत एकत्र किये गये। 'निषाद' और उसके दल के लोगों को अधिक मत मिले। और वह शासन करने लगा।

७

गणतन्त्र में न्याय से नीति को अधिक महत्व दिया जाता है। जनमत पर आधारित शासक-वर्ग जन-कल्याण की उपेक्षा कर सुरक्षा की अधिक चिन्ता रखता है।

राजा की मृत्यु के बाद सत्ता जनमत पर आधारित थी। दुर्भिक्ष के समय जनमत धन और शक्ति के सहारे एकत्र कर लेना सुगम था। अतः धन और शक्ति वालों के ही हाथ में सत्ता चली गई।

पहले जनता का शोषण एक राजा करता था। उसे ईश्वरीय अधिकार प्राप्त थे। किन्तु अब

शोषकों की संख्या बहुत बढ़ गई। अब के शोषकों को जनता जन्य अधिकार थे। सब अपने ही भाई थे, पर कुर्सी पर पहुँचते ही पराये हो गये। अधिकार-मद में फूले न समाते।

अपने ऊपर अपना ही राज्य था। पर दशा में कोई सुधार नहीं। दुर्भिक्ष दूर नहीं हुआ कर घटे पर विकास की दुहाई दे फिर बढ़ गये।

दुर्भिक्ष और शासन-सूत्र की ढिलाई के कारण भ्रष्टाचार पनपने लगा। घूसखोरी बढ़ी। क्योंकि दुर्भिक्ष में किसी का पेट अपनी आय से नहीं भरता था। शासन की ओर से इसे रोकने का कोई समुचित प्रयत्न भी नहीं होता था। जनमत के बल पर साधारण लोगों में अधिकार पहुँच गये थे। अतः चापलूसी और सिफारिश बाजी भी खूब बढ़ गई।

जनता का शासन जनता की परेशानियाँ दूर

न कर सका। भूंखे को अब भी भोजन न था। नंगे को कपड़े न थे। बेकार को काम तक न था। स्वराज्य था सुराज्य नहीं।

जनता की आशाओं पर पानी फिर गया। सारी कल्पनायें कल्पना ही बनी रह गई। एक भी साध पूरी न हो सकी, एक भी दिक्कत दूर न हो सकी; अपनत्व और समत्व नहीं था। नैतिकता और विश्वास नहीं था। अपना भाई अपना नहीं था। सुख साधनों में गिरि-घाटी सी विषमता थी।

जनता पुनः परिवर्तन चाहती है।

८

जनता का शासन-सूत्र से विश्वास उठ जाने के कारण अब अपनी समस्यायें स्वयं समझने की प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ। अब जनता सत्ता के समक्ष अपनी समस्या और उसका समाधान दोनों साथ

ही रखती पर उन उचित समाधानों से सत्ता की शक्ति को धक्का लगता। अतः उन सब समाधानों का ही समाधान कर दिया जाता।

व्यक्ति अवहेलना सह सकता है, समाज नहीं। अतः समाज और शासन में सघष चलने लगा।

६

जन समुदाय की बिखरी भावनाओं को नेतृत्व चाहिये था। साथ ही 'निषाद' के व्यक्तित्व से बड़ा व्यक्तित्व भी।

जन-क्रांति का मौन सेनानी 'पृथु' गुरुदेव की प्रेरणा से सामने आया। 'पृथु' के सामने अपने भाई थे। वह समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा था और वे भी समाज के सदस्य थे। अतः वह किसी का अनहित कैसे चाहता। वह रक्त से जब दरती परिवर्तन नहीं चाहता था। अतः उसने हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसक क्रान्ति का मार्ग खोजा।

१०

'पृथु' ने पृथुता (विकास) का सिद्धान्त रखा। वह विकास शासन के विकास सा नहीं। वह भूखों का विकास था, दीनों का विकास, वह सबका विकास था। अतः सच्चा विकास था।

सबके विकास में सबके उदय में (सर्वोदय में) विषमता सबसे बड़ी बाधा थी। अतः समता का यत्न किया।

सुख-साधनों की समता के लिये उत्पादन के साधनों का विकेन्द्रण आवश्यक था। उत्पादन के मुख्य साधन धरती और धन को सम करना था। श्रम तो सभी कर सकते हैं। यदि सबको समुचित उत्पादन के साधन मिल जाँय तो सबका विकास सम्भव होगा। सर्वोदय होगा।

११

पृथुता का, विकास का, सर्वोदय का सिद्धान्त सबको अच्छा लग। पर पूरा कैसे हो? सबको

उत्पादन के साधन कैसे मिले ? जो जितने साधनों पर अधिकार कर सका था, किये था। वह क्यों दे ? वह कैसे दे ? यह समस्या थी।

इस समस्या के दो ही हल थे—एक बलवत् छीनी जाय और दूसरे वह स्वयं दे दे।

'पृथु' का मत था; बलात अधिकार करने में स्थायित्व नहीं हो सकता। क्योंकि पारस्परिक द्वेष रहेगा। जब जो बलवान होगा वह छीन लेगा। फिर विषमता आ जायेगी। स्थायी शांति नहीं रह पावेगी। अतः दूसरा ही उपाय ऐसा था जो बिना रक्तपात के सद्भावना के साथ समस्या को हल कर सके।

अतः 'पृथु' ने सबसे साधन मांगने प्रारम्भ कर दिये। जिसने जितने दिये, वह लिये और उसे देदिये जिसके पास उनका अभाव था। यह क्रम तब-तक चलता रहा जब-तक समता न हुई। जब-

तक सब विकास पथ पर अग्रसर न होने लगे।

उत्पादक-साधनों की समता से उनके उपयोग में वृद्धि हुई। जिससे उत्पादन बढ़ा और अभाव दूर होने लगे। दुर्भिक्ष दूर हो गया। सबका विकास होने लगा, सब सुख और संतोष से जीवन-यापन करने लगे। सब में समता और सद्भावना आई।

इस विकास में बुराइयों का विनाश होता गया। शासन की सत्ता समाज को मिली। समाज सम्पन्न होने लगा। शासन क्षीण।

पूर्ण-विकसित समाज में शासन की आवश्यकता ही न रही। समाज स्वयं सारा प्रबन्ध कर लेता।

यही 'पृथु' का, सबके विकास का, सर्वोदय का शासन था।

——

आम्रा
भरतनिधि,